THE ECONOMIC TIMES

Date: 30-10-25

Move From Trading To Innovation Nation

Easing capital deprivation can help

ET Editorial

The list of the 10 richest Indian billionaires reads like a table of resources — fortunes made on oil, coal, steel, aluminium and cement. There is a vaccine manufacturer and another that makes generic drugs. The only technology company that derives its revenues from outsourced business processes. Rounding off the above list are an investor-turned-retailer and a real estate developer. The country's biggest piles of wealth have grown in commodity businesses where trading acumen takes precedence over innovation. Down the wealth ladder, the evidence becomes even more compelling that ideas chase capital in the country, although most Indians agree that they are living in an era in which intellectual property (IP) rules the world.

This is not an inconsistency in an economy short on capital, but its innovation quotient should rise as capital deprivation eases. The most successful tycoons in the country are among the biggest players in their game globally because scale is vital to any commodity business. They need to be innovative to keep their place, it's just that they deal with mature technologies where the marginal cost of innovation is high. This creates, along with capital, a moat for market leaders in resource businesses. The incentive to diversify is consequently low, contributing to slow innovation overall. The way India is building its capital has a bearing on how competitive its economy is.

Extending the notion of ideas chasing capital, India also exports a large slice of its innovation to overseas markets in the form of IP. Here, the Indian contribution to cutting-edge research is globally acknowledged. Harnessing it at home requires capital to flow to sunrise sectors. If the market is inefficient, GoI must step in. But GoI's role is restricted to signalling, which may not be sufficient. Ultimately, the market must correct itself, but it raises the chicken-and-egg question: India needs capital to innovate and innovation to build capital.

THE HINDU

Date: 30-10-25

Uneven growth

Increasing incomes and creating jobs are a must to boost demand

Editorial

The industrial production data for September is especially useful as it provides insights into longer periods such as the second quarter and the first half of the financial year. The news is not all bad, but there are areas that warrant attention. When looked at on a half-yearly basis, the IIP data for April-September 2025 show that industrial growth was the slowest in at least five years. At just 3%, the half-yearly growth is well below what it should be. However, quarterly growth shows that things are improving — Q2 growth was a more robust 4.1%, compared to 2% in Q1. The bright spot in all of this, at least on the surface, has been the manufacturing sector. In September, it grew by 4.8%, the second highest in this financial year. On a quarterly basis, the July-September 2025 quarter saw the manufacturing sector grow by a relatively strong 4.9%, the fastest quarterly growth it has seen since the quarter-ended December 2023. On a half-yearly basis, too, the sector's growth bounced back to 4.1% in the April-September 2025 half, after having slowed to 3.8% in the first half of the previous year. Activity in the mining sector contracted in September 2025, the second quarter, as well as in the first half of the financial year. While some of this can be attributed to the monsoon this year, this performance is still unusually poor. Strengthening the sector should be a priority to shore up India's energy and strategic mineral security.

The manufacturing sector's apparent strong performance, too, is not something that should be taken at face value. The data show that the growth is not broad-based, and is instead concentrated in some sectors. Of the 23 main manufacturing sub-sectors measured in the IIP, more than half contracted in the July-September 2025 quarter. Of concern is that labour-intensive sectors such as apparels, leather products, rubber products and plastics, all contracted in the September 2025 quarter. The sectors that grew included wood products, mineral products, basic metals and fabricated metal products, many of which are more capital intensive. If this trend persists, it could have negative implications for job creation, and warrants attention. The other troubling aspect of the data is that the consumer non-durables sector has contracted for the last six consecutive quarters. While some of these are essential items such as salt and edible oils, others are items of discretionary spending. Much of this is because of the base effect, but slack demand has been a problem that policymakers have been grappling with for some time. The only real solution lies in increasing incomes and creating jobs.

दैनिक भास्कर

Date: 30-10-25

न्याय पाने के रास्ते में आज भी अनेक अड़चनें रहती हैं

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने एक ट्रेन टीटीई को घूस लेने के जुर्म से 37 साल बाद बरी किया। इस कर्मी पर 50 रु. घूस लेने का केस डिपार्टमेंटल विजिलेंस ने 1988 में किया था, जिससे उनकी नौकरी चली गई। कैट ने इन्हें बरी कर दिया लेकिन रेलवे की अपील पर हाईकोर्ट ने 15 साल केस सुनने के बाद आरोप सही पाए। इस बीच टीटीई की मृत्यु हो गई, लेकिन परिवार ने एससी में अपील की। एससी ने पाया कि तीन में से दो गवाहों ने जुर्म से अनभिज्ञता दिखाई और तीसरे ने गवाही से इनकार किया। हाल ही में एससी ने लोगों की अन्यायपूर्ण गिरफ्तारी, लम्बे समय तक जेल में बिना सजा के रखने और गलत मुकदमा कायम करने पर सरकारों को फटकारा है। एससी की राय है कि संसद और राज्य विधायिकाएं गलत आपराधिक कार्रवाई साबित होने पर पीड़ित या उसके परिवार को आर्थिक मुआवजा देने का कानूनी प्रावधान करें। लॉ कमीशन ने भी इसकी संस्तुति की है। लेकिन क्या सत्य साबित करने के लिए ऐसे आरोपों से पीड़ित व्यक्ति के मरने के बाद परिजनों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति ऐसी होती है कि वे सीढ़ी-दर-सीढ़ी दशकों तक न्याय तलाशते रहें? क्या यह भी उतना ही सच नहीं है कि लचर और असाधारण रूप से लंबित सजा दर के कारण ही अपराधियों में कानून का खौफ नहीं रहता? क्या यह रोजाना की घटना नहीं है कि जमानत पर छूटने के बाद आरोपी गवाहों को इतना धमकाता है कि उनके जान को लाले पड़ जाते हैं? न्याय का रास्ता इतना भी आसान नहीं है।

दैनिक जागरण

Date: 30-10-25

न्याय में देरी

संपादकीय

आपराधिक मामलों में आरोप पत्र दाखिल होने के बाद आरोप तय होने में देरी पर सुप्रीम कोर्ट ने चिंता जताते हुए इस संदर्भ में देश भर के लिए दिशानिर्देश तय करने के संकेत दिए। इसे लेकर वह गंभीर है, इसका पता इससे चलता है कि उसने अटार्नी जनरल एवं सालिसिटर जनरल से मदद मांगी और एक वरिष्ठ वकील की न्यायमित्र के रूप में नियुक्ति भी कर दी। बहुत संभव है कि वह आरोप तय करने के मामले में कोई दिशानिर्देश भी सुना दे, लेकिन क्या इतने मात्र से समस्या का समाधान हो जाएगा? उसे इसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि आरोप तय होने में देरी भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 251 (बी) के तहत दिए गए इस स्पष्ट प्रविधान के बावजूद हो रही है कि जिन मामलों की सुनवाई केवल सत्र न्यायालय द्वारा की जानी हैं, उनमें पहली सुनवाई से 60 दिनों के भीतर ऐसा कर दिया जाना चाहिए। आखिर जब आरोप तय करने की समयसीमा को लेकर पहले ही व्यवस्था बनी हुई है, तब फिर एक और व्यवस्था देने यानी सुप्रीम कोर्ट के दिशानिर्देश बनाने से समस्या का समाधान कैसे हो जाएगा? अच्छा होगा कि वह दिशानिर्देश बनाने के पहले उन कारणों का निवारण करें, जिनके चलते आरोप तय होने में देर होती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो इसकी आशंका है कि उसके दिशानिर्देशों के बाद आरोप तो एक समयसीमा में तय हो जाएं, पर मुकदमों के निपटारे में तब भी विलंब होता रहे।

सुप्रीम कोर्ट ने आरोप तय होने में देरी का संज्ञान तब लिया, जब उसके समक्ष एक ऐसा प्रकरण आया, जिसमें आरोपित के एक साल से हिरासत में होने के बाद भी उसके मामले में आरोप तय नहीं किए जा सके हैं। इस प्रकरण पर विचार करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि वह जिला अदालतों से रिपोर्ट की प्रतीक्षा नहीं करेगा, बल्कि सीधे संपूर्ण भारत के लिए दिशानिर्देश जारी करेगा । उसे ऐसा करने का अधिकार है, लेकिन क्या जिला अदालतों से यह जानना आवश्यक नहीं कि आरोप तय होने में त्रिलंग क्यों होता है? सुप्रीम कोर्ट को उन कारणों से भी परिचित होने की आवश्यकता है, जिनके चलते पहले आरोप पत्र दाखिल होने में देरी होती है और फिर आरोप तय होने में उसे इससे भी अवगत होना चाहिए कि वे दोनों काम हो जाने पर भी मुकदमों का निपटारा समय पर नहीं होता। ऐसा केवल निचली अदालतों ही नहीं, बल्कि उच्चतर अदालतों में भी होता है। ऐसा जिन कारणों से होता है, उनमें से एक न्यायाधीशों और वकीलों से की कार्यप्रणाली भी है। तारीख पर तारीख के सिलसिले को कायम करने वाली इसी कार्यप्रणाली के चलते समय पर न्याय नहीं मिल पा रहा है और लंबित मुकदमों का बोझ बढ़ता जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट को इसका आभास होना चाहिए कि न्याय में देरी से देश का विकास बाधित हो रहा है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 30-10-25

उभरते क्षेत्रों का भ्रम और पारंपरिक क्षेत्र

शिशिर गुप्ता और ऋषिता सचदेव , (लेखक सीएसईपी में क्रमशः सीनियर फेलो और एसोसिएट फेलो हैं। ये उनके निजी विचार हैं)

इस बात को लेकर लगभग आमराय है कि भविष्य में देश की आर्थिक वृद्धि में सर्वस्वीकार्य है कि तेज वृद्धि के लिए राज्यों को कारक बाजार सुधारों के माध्यम से अपने विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों को आगे बढ़ाना होगा। मसलन जमीन की कीमतों में कमी, लचीले श्रम कानूनों का क्रियान्वयन तथा शहरों को मजबूत बनाना क्योंकि कृषि को नैसर्गिक रूप से धीमी गति से बढ़ने वाला उपक्रम माना जाता है।

तेज विकास वाले राज्यों मसलन गुजरात और कर्नाटक के प्रदर्शन की बात करें तो उनके सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी में बीते दशक में सालाना 8 फीसदी से अधिक की बढ़ोतरी देखी गई है। इसके लिए मुख्य रूप से विनिर्माण और सेवा क्षेत्र जिम्मेदार रहा है। यह बात उपरोक्त धारणा को पुष्ट करती है। परंतु विकास का यह ढांचा कृषि प्रधान राज्यों के लिए दुविधा उत्पन्न करता है । दुविधा यह कि क्या उन्हें अपनी कृषि संबंधी मजबूती का त्याग करके उद्योग और सेवा क्षेत्र के लिए माहौल तैयार करना चाहिए ताकि वे तेज विकास हासिल कर सकें? आज यह सवाल और भी प्रासंगिक है। क्योंकि वैश्विक व्यापार अनिश्चित है और विनिर्माण आधारित वृद्धि के पारंपरिक मॉडल का अनुसरण करना मुश्किल हो सकता है। मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश (अब विभाजित) जैसे राज्यों ने कृषि क्षेत्र की मजबूती का लाभ लेकर उच्च वृद्धि हासिल की। दोनों राज्यों के जीडीपी में कृषि का योगदान 30 फीसदी है और 2015 से 2025 के बीच उनके यहां यह क्षेत्र क्रमशः 6 फीसदी और 7.5 फीसदी की दर से बढ़ा। इस दौरान उनके जीडीपी में क्रमशः 6.2 फीसदी और 6.7 फीसदी की वृद्धि हुई। तर्क यह नहीं है कि इन राज्यों को कभी भी विनिर्माण या सेवा क्षेत्रों की आवश्यकता नहीं होगी,

बल्कि यह है कि इनका वर्तमान आधार यानी कृषि स्वयं विकास को गति दे सकता है, जबकि ये राज्य धीरे-धीरे गैर-कृषि उद्योगों की और अग्रसर होने के लिए तैयार होंगे ।

आंध्र प्रदेश की कामयाबी की कहानी की जड़ें उसके मछली पालन क्षेत्र में वैश्विक प्रतिस्पर्धी केंद्र के रूप में रूपांतरण से जुड़ी है, विशेष रूप से फ्रोजन झींगा उद्योग में। भारत वर्ष 2024 में 4.5 अरब डॉलर के नियत के साथ दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा झींगा निर्यातक बन गया, जिसमें आंध्र प्रदेश ने झींगा उत्पादन में 78 फीसदी और कुल समुद्री खाद्य उत्पादन का 30 फीसदी योगदान दिया। आंध्र प्रदेश में मछली पालन क्षेत्र ने पिछले एक दशक में 16 फीसदी वार्षिक दर से वृद्धि की है। यदि यह वृद्धि अगले पांच वर्षों तक जारी रहती है, तो मछली पालन राज्य के जीडीपी का लगभग एक चौथाई हिस्सा बन सकता है और राज्य की आर्थिक वृद्धि में 1.2 फीसदी की बढ़ोतरी कर सकता है।

मत्स्य उद्योग का उदय अनुकूल समय और रणनीतिक क्रियान्वयन का एक मिश्रण है। वर्ष 2009 में थाईलैंड और अन्य दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के झींगा फार्मों में 'अर्ली मॉर्टलिटी सिंड्रोम (ईएमएस) फैलने से वैश्विक बाजार में भारी कमी उत्पन्न हो गई। आंध्र प्रदेश ने इस मौके का फायदा उठाया और समय रहते 'पैसिफिक व्हाइट श्रम्प' नामक प्रजाति को अपनाया जो एक अधिक रोग-प्रतिरोधक, किफायती और तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति है।

इस नई प्रजाति को आंध्र प्रदेश में व्यापक रूप से अपनाने में समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एमपीईडीए) ने अहम योगदान दिया। उन्होंने न्यूनतम या बिना किसी शुल्क के बार-बार प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए। इसके साथ ही, वर्ष 2015 में राज्य सरकार ने अपनी मत्स्य नीति जारी की। इस नीति के तहत झींगा फार्म स्थापित करने के लिए 50 फीसदी तक की सब्सिडी प्रदान की गई और बिजली दरों में उल्लेखनीय कटौती की गई। इससे किसानों की लागत कम हुई और विकास के लिए अनुकूल वातावरण बना।

ट्रंप द्वारा भारी शुल्क लगाने के बाद जरूर इस उद्योग को चुनौती उत्पन्न हुई है और उम्मीद की जानी चाहिए कि यह अल्पकालिक होगी। यह इस बात का सशक्त प्रमाण है कि आर्थिक विकास उत्पादकता में सुधार के माध्यम से होता है, जो तुलनात्मक लाभ द्वारा संचालित होता है । मध्य प्रदेश की सफलता उत्पादकता में सुधार और विविधीकरण पर आधारित है। वर्ष 1995 से 2005 के बीच राज्य में वास्तविक कृषि वृद्धि दर केवल 3 फीसदी वार्षिक थी, लेकिन 2000 के दशक के उत्तरार्ध में हुए सुधारों के बाद इसमें उल्लेखनीय तेजी आई। सिंचित क्षेत्र 24 फीसदी से बढ़कर 67 प्रतिशत हो गया, जिससे 2006 से 2022 के बीच खाद्यान्न उत्पादन दोगुना हो गया जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह वृद्धि केवल 50 फीसदी रही, वह भी खरीफ और रबी दोनों फसलों के लिए। इसका परिणाम यह हुआ कि आज राज्य देश के गेहूं उत्पादन में 21 फीसदी और सोयाबीन उत्पादन में 42 फीसदी योगदान देता है। इसके अलावा, फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने के लिए राज्य ने 2013 से 2023 के बीच खाद्यान्न भंडारण क्षमता को तीन गुना बढ़ा दिया, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर भंडारण क्षमता लगभग स्थिर रही। राज्य की गहन जल - खपत वाली फसलों से हटकर विविधीकरण पर ध्यान स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । कुल फसल उत्पादन का 14 फीसदी तिलहन और 10 फीसदी दलहन से आता है । यह पंजाब से बहुत अलग है जहां तिलहन और दलहन मिलाकर कुल फसल उत्पादन का 1 फीसदी से भी कम हिस्सा हैं। मध्य प्रदेश ने डेरी के क्षेत्र में भी विविधीकरण किया। वहां वर्ष 2002 से 2024 के बीच दूध उत्पादन चार गुना बढ़ा जो राष्ट्रीय स्तर पर हुई 2.8 गुना वृद्धि से कहीं अधिक है। इस वृद्धि में 'आचार्य विद्यासागर गौ संवर्धन योजना' जैसी पहलों ने मदद की, जिसके तहत डेरी फार्म स्थापित करने के लिए बैंक ऋण पर सब्सिडी दी गई और देशी गायों की नस्लों को विशेष रूप से बढ़ावा दिया गया। चूंकि राज्य की अधिकांश भूमि अब सिंचाई के अंतर्गत आ

चुकी है, इसलिए कृषि क्षेत्र में आगे की वृद्धि के लिए उच्च मूल्य वाली फसलों की ओर रुख करना और पशुपालन को और अधिक प्रोत्साहित करना आवश्यक है। ऐसा कदम राज्य की मौजूदा ताकतों का बेहतर उपयोग करेगा और पर्यावरणीय व वित्तीय दृष्टि से भी अधिक टिकाऊ सिद्ध होगा।

मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश का आर्थिक सफर दिखाता है कि राज्य अपनी मौजूदा ताकतों को पहचानकर और उनका लाभ लेकर उल्लेखनीय सफलता हासिल कर सकते हैं। क्षेत्रवार प्रशिक्षण, लक्षित सब्सिडी तकनीक को अपनाने तथा बाजार पहुंच और अधोसंरचना में सुधार के साथ इन राज्यों ने कृषि जैसे पारंपरिक रूप से कम उत्पादक वाले माने जाने वाले क्षेत्र को समावेशी और टिकाऊ आर्थिक वृद्धि के ताकतवर उत्प्रेरक में बदल दिया है।

Date: 30-10-25

विकसित भारत उपयोगी ज्ञान का सम्मान जरूरी

देवाशिष बसु, (लेखक मनीलाइफ डॉट इन के संपादक और मनीलाइफ फाउंडेशन के ट्रस्टी हैं)

कुछ दिनों पहले जोएल मोकिर, फिलिप एगियों और पीटर हॉविट को अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार दिया गया। मोकिर की दलील है कि समाज तब फलते-फूलते हैं जब वे उपयोगी ज्ञान का पोषण करते हैं, उसका विकास करते हैं और उसे प्रसारित करते हैं। एगियों और हॉविट ने समझाया कि कैसे ज्ञान तब अत्यधिक उत्पादक हो सकता है जब वह प्रतिस्पर्धा, विनाश और पुनरुत्पादन को उन्मुक्त करता है। वे मिलकर यह स्पष्ट करते हैं कि कुछ देश लंबे समय तक विकास क्यों करते रहते हैं।

क्या भारत मोकिर द्वारा दिए गए आर्थिक प्रगति के खाके से कुछ सीख सकता है? भारतीय नीति निर्माताओं के पास आर्थिक खाकों की कमी नहीं है। इसके बावजूद हमारी प्रति व्यक्ति आय पूर्वी एशियाई देशों की तुलना में बहुत कम रही है। आर्थिक प्रगति को कई तरीकों से मापा जा सकता है लेकिन कुल मिलाकर भारत अपनी संभावनाओं की तुलना में बहुत कम गति से बढ़ रहा है। हमारी ढेर सारी प्रगति दो सुखद घटनाओं की बदौलत रही है।

एक देश का सॉफ्टवेयर उद्योग और दूसरा अनिवासी भारतीयों द्वारा भेजी जाने वाली धनराशि। दशकों के अनियोजित कामों के परिणामस्वरूप एक मिलीजुली तस्वीर सामने आई। कुछ क्षेत्रों में उत्कृष्टता और एक समृद्ध मध्य वर्ग है लेकिन इसके साथ ही आम जनता में शिक्षा की कमी, बेरोजगारी है और 80 करोड़ लोग सरकारी मदद पर निर्भर हैं।

भारत पिछले 75 वर्षों की धीमी गति से आगे बढ़कर सरपट दौड़ने वाला देश कैसे बन सकता है? वह मोकिर के 'उपयोगी ज्ञान' का इस्तेमाल करके ऐसा कर सकता है। यानी, समाज के उत्पादन, संपर्क और नए विचारों की मदद से आर्थिक प्रगति हासिल कर सकता है। उनका कहना है कि 18वीं सदी में यूरोप का बदलाव तीन अंतर्संबंधित संस्थानों पर केंद्रित थी- प्रस्तावनात्मक ज्ञान (विज्ञान और सिद्धांत) का निर्माण, उसका तकनीक और अभियांत्रिकी में रूपांतरण और एक ऐसा नेटवर्क जो इन दोनों के बीच विचारों के मुक्त प्रवाह को संभव बनाता है।

आधुनिक चीन ने असाधारण गति से इसका अपना संस्करण तैयार किया है। उसका शोध एवं विकास व्यय उसके सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 2.5 फीसदी से अधिक है, उसकी पेटेंट फाइलिंग का आंकड़ा किसी भी अन्य देश से अधिक है और उसके विश्वविद्यालयों से हर वर्ष हजारों की तादाद में इंजीनियर और वैज्ञानिक निकलते हैं। इन आंकड़ों के पीछे कुछ गहरी चीजें हैं: एक सघन नेटवर्क जो शोध संस्थानों और आपूर्ति श्रृंखलाओं के औद्योगिक क्लस्टर को जोड़ता है। यह व्यवस्था उस उदार और खुले मॉडल से काफी अलग है जिसकी सराहना मोकिर ने अपने कामों में की है।

बावजूद इसके यह उसी तरह काम करती है यानी लगातार उपयोगी ज्ञान का सृजन और उपयोग। उदाहरण के लिए यह बात लगभग सभी जानते हैं कि चीन की उड़ने वाली कारें अब संचालित होने ही वाली हैं और ड्रोन से सामान की आपूर्ति एकदम सामान्य होती जा रही हैं। एक बात जो कम लोग जानते हैं वह यह है कि अकेले इस वर्ष वहां के छह विश्वविद्यालयों ने 'निम्न-उन्नतांश प्रौद्योगिकी और अभियांत्रिकी' में डिग्री पाठ्यक्रम शुरू किए हैं। साथ ही, एक पूर्ण और सघन आपूर्ति श्रृंखला भी अस्तित्व में आ रही है, जो इस उप-क्षेत्र को तेजी से विस्तार करने में मदद करेगी।

भारत का वैज्ञानिक अभिजात वर्ग विश्वस्तरीय है, फिर भी प्रयोगशाला और फैक्ट्री के बीच की कड़ी अब भी कमजोर बनी हुई है। देश अपने जीडीपी का केवल 0.7 फीसदी शोध एवं विकास पर खर्च करता है जो चीन की तुलना में एक तिहाई है। इसका अधिकांश हिस्सा सरकारी क्षेत्र से आता है। भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षण में मजबूत हैं लेकिन शोध में कमजोर हैं और उद्योग जगत तकनीक को आयातित करने को प्राथमिकता देता है बजाय कि उसे अपनाने या विकसित करने के।

इसका परिणाम एक ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में सामने आता है जो मानव संसाधन के मामले में तो समृद्ध है लेकिन तकनीकी क्षमता में नहीं। अगर भारत में मोकिर के खाके को अपनाया जाता है तो इसका अर्थ यह मानना होगा कि आर्थिक वृद्धि के मूल में ज्ञान व्यवस्था ही है। लक्ष्य होना चाहिए ऐसी अधोसंरचना विकसित करना जो उपयोगी ज्ञान का विस्तार करे और उसे शिक्षण योग्य बनाए। ऐसा ज्ञान उस समय खासतौर पर बदलावपरक होता है जब यह स्वच्छ ऊर्जा, शहरी परिवहन, कचरा पुनर्चक्रण, जल प्रबंधन और किफायती स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच सुनिश्चित करने में मदद करता है।

भारत को सैद्धांतिक और तकनीकी ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान और इंजीनियरिंग शिक्षण में भारी निवेश करना होगा। उसे तकनीकी विश्वविद्यालयों और पॉलीटेक्निक के नेटवर्क का भी विस्तार करना होगा। सरकार ने हाल ही में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों का निजी-सार्वजनिक भागीदारी की मदद से आधुनिकीकरण करने का निश्चय किया। यह कदम इसी दिशा में उठाया गया है।

वर्ष 2022 के आंकड़ों के मुताबिक 36 फीसदी चीनी अंडरग्रैजुएट बच्चों ने इंजीनियरिंग की डिग्री ली। ब्रिटेन और अमेरिका में यह अनुपात केवल 5 फीसदी है। वर्ष 2025 में भारत ने विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग और गणित में उतने ही स्नातक तैयार किए जितने कि चीन ने लेकिन उनमें से अधिकांश सॉफ्टवेयर सेवाओं में चले गए। हमारे यहां स्नातकोत्तर और डॉक्टोरल स्तर पर इनकी संख्या काफी कम है जबकि मूल शोध उन्हीं जगहों पर होता है।

निजी क्षेत्र के शोध एवं विकास को प्रोत्साहित करना भी उतना ही आवश्यक है। फिलहाल बड़ी भारतीय कंपनियां अपनी बिक्री का केवल 0.2 से 0.3 फीसदी हिस्सा ही शोध पर व्यय करती हैं जो वैश्विक मानकों से बेहद कम है। कर प्रोत्साहन, लक्षित सरकारी खरीद और पीपीपी से हालात बदल सकते हैं। रक्षा शोध एवं विकास संगठन तथा भारतीय

अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने दिखाया है कि कैसे सरकारी मिशन के साथ आपूर्तिकर्ता और इंजीनियर तैयार किए जा सकते हैं। असल चुनौती है इस मॉडल को असैन्य क्षेत्रों में दोहराना।

मोकिर जिस दूसरी अनिवार्यता की बात करते हैं वह है संपर्क। यानी विज्ञान को व्यवहार से जोड़ना। देश की नवाचार व्यवस्था अभी भी विभाजित है।

अकादमिक शोध का व्यवसायीकरण नहीं हुआ है। औद्योगिक क्लस्टर अक्सर बिना शोध संस्थानों की करीबी के काम करते हैं। एक अधिक एकीकृत मॉडल विश्वविद्यालयों को क्षेत्रीय विनिर्माण केंद्रों के साथ जोड़ सकता है, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के लिए संयुक्त नियुक्तियों को बढ़ावा दे सकता है, और ऐसी योजनाएं बना सकता है जिनमें शैक्षणिक संस्थानों और उद्योगों के बीच सहयोग अनिवार्य हो। चीन के विश्वविद्यालय-संबद्ध विज्ञान पार्कों का नेटवर्क और जर्मनी के फ्राउनहॉफर संस्थान इस दिशा में शिक्षाप्रद उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने आर्थिक प्रगति को 'ज्ञान के भीतर ज्ञान का विकास' बताया था। उनके उस कथन में मोकिर की अंतर्दृष्टि और भारत की हालत को महसूस किया जा सकता है। हमारे पास प्रतिभा है, उद्यमशील ऊर्जा है और तेज विकास की क्षमता रखने वाला घरेलू बाजार भी है। लेकिन जो कमी है वह एक ऐसी प्रणाली की है जो स्वयं ज्ञान पर आधारित होकर इसे निरंतर विकसित होने दे। इसे कैसे प्राप्त किया जाए?

व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ है बहुत सारा अनाकर्षक लेकिन जरूरी परिश्रम। इसमें संस्थानों का निर्माण, प्रोत्साहन तंत्र और ऐसे फीडबैक तंत्र शामिल हैं जो परिणामों में निरंतर सुधार करें और साथ ही दस्तावेजीकरण, पुनरावृत्ति और प्रसार भी जरूरी हैं। यह सब तब तक असंभव है जब तक एक ऐसी संस्कृति विकसित न हो जो उपयोगी ज्ञान का सम्मान करे और उसका उत्सव मनाए। यह निश्चित रूप से एक कठिन कार्य है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 30-10-25

अपराधों की इस प्रकृति को गंभीरता से लेना होगा

आर के राघवन, (पूर्व निदेशक, सीबीआई)

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो (एनसीआरबी) ने हाल ही में अपनी 'क्राइम इन इंडिया 2023' रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट में देश में अपराध की स्थिति का पूरा विश्लेषण है। सरकार के अंदर और बाहर इसकी स्वीकृति है। मगर इन आंकड़ों का इस्तेमाल करने वाले कई लोग रिपोर्ट में दिए आंकड़ों को शक की निगाह से देखते हैं। उनमें से एक छोटे समूह का तो यहां तक मानना है कि छवि चमकाने के लिए रिपोर्ट में हेर-फेर किया गया है।

समस्या यह है कि अगर आप एनसीआरबी रिपोर्ट को खारिज करते हैं, तो सार्वजनिक तौर पर ऐसा कुछ और नहीं है, जिससे आपको अपराध की घटनाओं, उनकी प्रकृति और प्रवृत्ति आदि की तस्वीर का पता चल सके। इसकी यह आलोचना सही है कि अपराध के आंकड़े एक साल से ज्यादा पुराने होते हैं। मगर यह देरी इसलिए होती है, क्योंकि एनसीआरबी राज्य पुलिस बलों से आंकड़े इकट्ठा करती है। कई राज्य आंकड़ा देने में देरी करते हैं, तो कुछ राज्य सारे आंकड़े एक साथ नहीं देते। फिर भी एनसीआरबी का विश्लेषण बहुत कुछ बता जाता है। हालिया रिपोर्ट के अनुसार, साल 2023 में आईपीसी के तहत संज्ञेय अपराधों में 5.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिनमें विशेष और स्थानीय कानूनों के तहत सूचीबद्ध अपराधों में 9.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। अपराध दर की बात करें, तो प्रति 1,00,000 आबादी पर अपराध की घटनाएं 2022 में 422 थीं, जो 2023 में बढ़कर 440 हो गईं। हालांकि, यह संख्या हमारे जैसे बड़ी आबादी और गंभीर बेरोजगारी की समस्या वाले देश में बहुत महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती है। वैसे तो कोई भी अपराधचिंता का विषय है, पर हत्या व महिलाओं-बुजुर्गों के खिलाफ हिंसा सबसे ज्यादा परेशान करने वाली बात है। साल 2023 में 29,000 से ज्यादा बलात्कार के मामले सामने आए, जो 2022 की तुलना में मामूली कम हैं। 2023 में अकेले दिल्ली में बलात्कार के 1,088 मामले दर्ज किए गए। यह 2012 के निर्भया गैंगरेप- हत्या मामले को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर हुई प्रतिक्रिया की याद दिलाता है, जिसने पुलिस व्यवस्था पर बुरा असर डाला था।

इन संज्ञेय अपराधों की रोकथाम की बात करें, तो पुलिस की, विशेषकर अपराध वाली जगहों पर ज्यादा तैनाती महिलाओं के खिलाफ हिंसा को कम कर सकती है। नागरिकों को भी ऐसे अपराध रोकने में योगदान देना होगा। हमें याद रखना चाहिए कि बलात्कार दुनिया भर में सबसे कम रिपोर्ट किए जाने वाले अपराधों में से एक है। ग्रामीण भारत में तो यह एक आम सच्चाई है। सामाजिक बदनामी, प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा डराने-धमकाने के कारण अक्सर ऐसे मामले पुलिस कोर्ट के समक्ष आते ही नहीं हैं। इन सब कारणों से, यौन अपराधियों को सजा मिलने की दर बहुत कम रहती है। जब तक बड़ी संख्या में महिला एक्टिविस्ट आगे नहीं आएंगी और उन्हें तंत्र का साथ नहीं मिलेगा, तब तक यह शर्मनाक स्थिति हमारे समाज पर एक धब्बा बनी रहेगी।

दूसरा जघन्य अपराध है- हत्या । साल 2023 में 27,721 हत्याएं दर्ज की गईं, जो पिछले साल के मुकाबले 1,200 ज्यादा थीं। हत्या अक्सर किसी व्यक्ति द्वारा अचानक की जाती है, जिससे वह सबसे मुश्किल हिंसक अपराधों में से एक बन जाता है। इसलिए, इसे रोकना मुश्किल है। भारत में एक दशक पहले तक बंदूकों का इस्तेमाल कम था। अब इसका इस्तेमाल तेजी से बढ़ रहा है। अगर हम अमेरिका जैसी स्थिति नहीं चाहते, तो हमें बंदूक - संस्कृति पर तुरंत लगाम लगानी होगी।

भारत में अपराध का एक नया व चिंताजनक पहलू साइबर क्राइम का बढ़ता ग्राफ है। साल 2022 के मुकाबले 2023 में साइबर क्राइम के मामले दोगुने हुए। हमारी जिंदगी में डिजिटल टेक्नोलॉजी की बढ़ी दखल साफ तौर पर बड़ी कीमत वसूल रही है। साइबर क्राइम की जटिलता और विस्तार को लेकर समाज में जागरूकता आ रही है, लेकिन इसे पूरी तरह से रोकने के लिए और प्रयास होने चाहिए। इस काम में सरकार और सिविल सोसाइटी, दोनों से प्रयास की अपेक्षा है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हमारे सबसे कमजोर नागरिक, चाहे वे बुजुर्ग हों या महिलाएं या बच्चे, धोखाधड़ी, जबरन वसूली का शिकार न बन जाएं और अपराधियों के जाल में न फंसें।